शास्त्रोक्त मुक्ति सम्बन्धी विविध विधानों की सामाजिक स्वीकृति, वैज्ञानिकता एवं महत्त्व

डॉ ममता त्रिपाठी*

ज्ञान भारतीय चिन्तनधारा का केन्द्रबिन्दु रहा है। भारतीय चिति के ज्ञानसाधना का परिणाम है कि हमारे देश में विभिन्न दार्शनिक धाराओं का विकास हुआ। यहाँ सामान्य जनमानस भी मुक्ति के मार्ग का अन्वेषण करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि भारत में शास्त्र और लोक के मध्य कोई विभाजन नहीं है अपितु उनमें अद्‌भुत समन्वय है। भारतीय दर्शन में वैराग्य का केवल सीधा सपाट अर्थ सभी कार्यों से विरत हो जाना नहीं है अपितु उसका अर्थ है निःसंग भाव से कर्म करते रहना, किसी प्रकार का राग, मोह न करना। शास्त्रविहित मुक्ति के अनेक मार्ग हैं, परन्तु लक्ष्य एक ही है। यही स्थिति भारतीय समाज की भी है। सामान्य जनमानस अपनी-अपनी क्षमतानुसार उपलब्ध विकल्पों का सहारा लेकर परमसत्ता का साक्षात्कार करना चाहता है।

जीवन जीने के क्रम में अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब मानव स्वयं को बहुत ही बँधा हुआ, अनेक विषयों, चिन्ताओं से आबद्ध पाता है। ऐसे में समय-समय पर उसे मुक्ति की आवश्यकता होती है। मानव का बद्ध मानस मुक्त होना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता, योग्यता, प्रतिभा और ज्ञान के अनुसार उसके मुक्त होने का अनुभव भी भिन्न-भिन्न है और आवश्यकतायें भी भिन्न-भिन्न। यहाँ जब मुक्ति की बात की जा रही है, तो इस शब्द से तात्पर्य स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्तरों पर मुक्ति से है। स्थूल स्तर पर मुक्ति अनेक रूपों में मानव जीवन में घटित होती है। वह विभिन्न भावनाओं से मुक्ति चाहता है। विभिन्न प्रकार के विचार जो मानव के विचारों और हृदय को जकड़े होता है मानव उनसे मुक्ति चाहता है। उदाहरणार्थ दैनन्दिन जीवन-की भाग-दौड़ और दुश्चिंताओं से मुक्त होने और अपने में स्थिर होने के लिये मानव प्रकृति के सान्निध्य में जाता है, नदी, समुद्र, झील, ताल, पहाड़, वन आदि देखता है। अनेक प्रकार की दुश्चिंताओं से बचने के लिये, पीछा छुड़ाने के लिये मनुष्य एकान्त खोजता है। मन्दिर जाकर, अध्यात्म की शरण में जाकर चिन्ताओं को उतारकर धरना चाहता है। सन्तोष अनुभव कर मुक्त होना चाहता है। अपने दुःख से दुःखी होकर दूसरों के दुःख से तुलना करके स्वयं को सान्त्वना देता है। मन को ढाँढस बँधाता है।

मानव जीवन में शोक, हर्ष, विषाद, पीड़ा, दुःख, सुख आदि लगे ही रहते हैं। इस मर्त्यलोक में जीवन इनके बिना सम्भव नहीं है। अनेक बार ऐसा होता है कि व्यक्ति को लगता है कि सबकुछ समाप्त होंने वाला है। सब कुछ ध्वंस होने वाला है और वह स्वयं को खण्डित होते हुये, बिखरते हुये, चूर-चूर होते हुये देखता है। ऐसा समय आता है जब मनुष्य की जिजीविषा हारने लगती है और घोर निराशा व अवसाद घर करने लगता

*सहायकाचार्य, संस्कृतविभाग, गार्गी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय सीरी फोर्टरोड- 110049
ईमेलः- *mamta-tripathi@gargi-du-ac-in*